

श्री मोहन-चरा, स्मारक-प्रथमाला प्रथम ८

आराधना सूत्र-संग्रह

(हिन्दी अनुवाद सहित)

प्रकाशक

श्रीसरतार गच्छ मडन आचार्य श्रीनिवास

मुन्निजी महाराज के 'शिष्यरत्न मण्डल'

श्रीप्रेममुनिजी के उपदेश से

जयपुर निवासी सरतारगच्छ

श्रीसप की द्रव्य सहाय से

श्रीमान् हमीरमल्लजी

गुलेझा ।

मुद्रक — वीरपुर प्रिन्टिङ्ग प्रेस, अजमेर ।

बी० सा०

प्रति

/ वि० सा०

१५०१

१०००

१००६

विषयानुक्रम

चतुसरणं पर्यन्ता	१
आन्तर पञ्चमहागण पुण्यश्रा	३६
पाप प्रतिपाल गुण वीनाधान सूत्र	२७
चतुर्गति नीच समापान प्रकरण	१०७
सुपथ शिक्षा प्रकरण	१३२
आत्मभारता (श्लोक सस्कृत)	२००
चार शरणा आदि	२१०
पद्मावती धाराधन	२१३
घाट भावना सम्भार	११

श्रीचिनदत्तगुरु कशलाख्यगुरु प्रवर,
 श्रीचिनचन्द्रगुरु मणिवारकमार्यवरम् ।
 तं च नमामि सदाऽऽश्चर प्रतेरोधर,

श्रीचिनचन्द्रगुरु ततकीर्तियशोनिहरम् ॥ १ ॥

सविद्यो मुनिराश्रमोहनमुनिर्ज्ञानक्रियासत्तम
 स्तच्छिष्या मुनिमुह्य चिनमरा सूराररा निभमा ।
 धीमद्रानमुनिश्च केशरगुनिरचारिणिणा केशरा,
 पूय शीजिनान्नपूरिगुरवोऽमीस्यु प्रसन्नमयि ॥ १ ॥

— शुद्धि पर —

१०	पठि	अशुद्ध	शुद्ध
२४	१०	न्फुणा	पुणो
३०	६	कु ट्ठ	कुट्ठ
३२	१०	घदय	धय
३५	२	तिविद्ध	तिविह
३६	११	सकिले	सकिले
३६	६-७	घउरग	घउर ग
३८	४	मज्जयण	मज्जयण
४१	११	भवक्क	भरक्क
४१	११	फरण	फरण
४१	२	सुहास	सुहाण
४६	११	कलुम	कलुम
४७	१०	रुं	रुव

(४)

४८	६	रसगारय	रसगारध
"	"	सायागारय	सायागारध
"	७	मरणे	मरणे
४९	१०	यश्मो	यश्मो
५३	३	सेसाण	सेसाण
"	५	हराण	हराण
५१	८	सव्य	सव्य
५५	७	मिद्वाण	मिद्वाण
५६	८	सव्य	सव्य
६५	३	कजम	कजम
७५	५	कमाध	कमाधो
८५	५	ठाण	ठाण
९०	१०	अचित	अचित
९०	१	मतो	मतो

(१)

६३	३	उनीष	उनीष
६५	६	कय	कयवा
६५'	३	मिच्छाम	मिच्छामि
६६	११	हेउ	हाउ
१०६	१०	कयाइ	ज कयाइ
१११	१०	पुठवा	पुठवी
१०८	११	य	य
१०६	७	तपि	तपि
१०७	११	मज्य	मज्य
१३७ - -	२	वह गः	वह गग
१४६	११	स -	मज्य
१५३	१	मुक्क	मुक्क
१५४ -	५	भाणे	भाणं
१५५	७	वत्तम	वत्तम

४९	१०	घनो	व नो
५०	८	गहीइ	रोहीइ
१६१	१०	कहवि	कहधि
१६६	४	पालि	पालि
१६६	१	तन्दिह-ता	तन्दिह-ता
१६६	१	खि ठ	खित्त
१६६	३	मुत्त	खुत्त -
१७०	८	पुत्ता	पुत्तो ।
१७१	४	नग्ग तो	नक्कत्तो
१७०	५	दट तु	दट तु
१७०	१०	मुणिए	मुणिए
१७३	१	अतगडो	अ तगडो
१७४	३	निगसी	निगसि
	५	दत्तो -	दत्तो

(७)

१७५	- १	निन	निन
१७४	०	यिइ	यिइ
१७५	६	सहुल	सहुल
"	"	कट्ठट्टु	कट्ठ
१७८	७	ऽकिं	किं
"	८	समी त्थे	समीत्थे
१८०	१०	अयपिंइ	अयपिंइ
१८०	६	भज्जियय	भज्जियय
"	१०	ज च	ज च
१८२	११	हु य	हुय
१८५	७	भय च	भय च
१८७	१	समाहियंगमगो	संकोहियंगमग
"	"	ीह	निइ
"	७	दट्टु	दट्टु

(८)

१८८	८	दुग्ध	दुग्ध
१९०	३	रामाय	रामाय
१९०	१०	चक्र	चक्र
१९३	४	दुग्ध	दुग्ध
१९४	०	ज	ज
१९८	६	दुग्ध	दुग्ध
२००	२	धामो,	धामो
२०३	७	शरण,	शरण
२०५	२	विहित	विहित
"	१०	यद्	यद्
२०६	५	दुग्ध	दुग्ध
"	६	निन्दित	निन्दित
"	१	धामाय	धामाय

चउसरणा पयन्ना

हिन्दी अर्थ सहित



(तीन आयबिन कर के यह सूत्र पढ़ना)

मारज्ज नोगविरेट्टे, उक्खित्तण गुणरओ अ
ड्डिरत्ती । यलियस्स निदणा वण-निमिच्च-
गुणशरणा चेव ॥ १ ॥

पाप 'यापार' से निवृत्त होन रूप 'मामाथिस'
[म] न अथम आवश्यक है, 'चा'
[पा] या उदृष्ट स्तुति करने रूप

का दमरा आर्ययक गुणयत गुर को उदन करने रूप बदनक' नाम का तीमरा आर्ययक, लगे हुए अतिचार रूप टोपा की निदा करना यह 'प्रतिवमण' नाम का चौथा आर्ययक, आत्मा को जा उडा दूपण लगा हो, उमरो मिटाने के लिये 'राडमंग' करना यह पाचवा आर्ययक और गुणा से धारण करन रूप जो 'पञ्चमण' किया जाय यह छहवा आर्ययक है । अब इन छ आर्ययको का उर्णन पतलाने है ॥ १ ॥

चारित्तस्म निमोही, कीरड 'मामाण्य
मिल इडय । सायजेयरपांगण, उज्जणासेरण
तणयो ॥ २ ॥

निनेश्वर देव के इस शासन में सामायिक से निश्चय करके चात्त्र की विशुद्धि होती है, किन्तु
करेमि भत । मामान्य सायजन जोग

पञ्चस्वार्थि" आदि सामाजिक ऋद्धि उच्चर कर
साव्य नोग का त्याग करने से और सुक वा
इरियागहिया पटिस्मना, सम्मध्य करना आदि
निर्णय योग का सेवन करने से होती है ॥१॥

उसण्याररिमोही, चडशीमार धण्य
किजउ य । अचम्भुअगुणादिपर-ध्वेय
निणरदिदाणं ॥ ३ ॥ - -

दर्शनार्थ का विबुद्धि 'वर्जिसयो' (सौगम्स) से
हानी है। कारण? वह चन्मसत्थो चित्तये 'गम्याना
के अन्यत अचम्भुन गुणा च काज्ञन रूप चांवीस
नार्थद्वरा की स्तुतिमय है ॥ ३ ॥

, नाणार्इआ उ गुणा, तेम्मपत्तपरिचि

निद्वयगुणगुणामना अरिहता हतु मे
सरण ॥ १६ ॥

एक ही उच्य से प्राणियों का अर्थात् शरीरों का एक ही समय में मिटाने वाला और तीन जगतों का उपद्रव नष्ट करने, जैसे भी अरिहता का मुझ शरण है ॥१६॥

पयसापण्डित सुवर्ण, निध्यागा गुणेषु
ठावता । निधिलोथमृद्धता अरिहता हतु मे
सरण ॥ २० ॥

समस्त जगत् का अर्थन धारणकर्ता से शक्ति प्राप्त करने वाले और मद्गुणा में स्थापित करने वाले, एक जीविलोक का उद्धार करने वाले, जैसे धारिहता का मुझे शरण हो ॥२०॥

अत्र बुधगुणान्, नियममममदरूपमादि
 अदिथन् । नियममसुदरुणान्, एदिरनो
 मरणमरिहते ॥ २१ ॥

अनि अद्भुत गुणवान् आर अपन यराक्ष्य
 व द्रुमा से समस्त निशाआ के अतिम भाग तरु
 प्रकारान्, ऐसे गांधी अनादि, अत्र न अदित
 दरा का मैंने गणन प्रकार किया है ॥-९॥

उभिमयजरमरुणाण्, मयत्तदुकरसमस
 मरुणाण् । विदुमरुणनसुदुपाण्, अग्निहताण्
 नमो ताण् ॥ २२ ॥

एतद्दाम परा और मरण क्य त्याग किया है,
 समस्त दुग्गा से दुग्गी दानवान् प्राणिया का जो
 शरणाभूत है और नोन नगा के लोगों के

नक्ष से उद्वेग निवृत्त हूँ रागाद्वेषरूप शत्रुओं
निम्न अमृत लक्ष्यशन, सयोगी केवल ज्ञानिय
प्रत्यक्ष रूप जाने जान और स्वभाविष्य सुख
य न जान, ऐसे अज्ञान मान ध्यान सिद्धा का
परल हो ॥२६॥

पडिपिन्लियपडिणीया, ममग्गभा
गिददुमवरीया । जोईसरमरणीया, मि
मग्ग ममग्गाया ॥ २७ ॥

निम्न रागादि शत्रुओं को तिरस्करित कि
पय भवरूप वाच को ध्यानरूप अग्नि से
अस्म निया है, योगीश्वरों के लिए आश्रयमूर्त
भय प्राणिया के लिए स्मरण करने योग्य
मिद्धों का मुझे शरण ॥ २७॥

पाणिथपरमाण्डा, गुणनीमंदा वि

मरदा । लुईयगिचदा, सिद्धापरण
सिद्धदा ॥ २८ ॥

परम ज्ञान द प देने वाले, गुणा के मारुप,
भयके पद (मूल-लक्ष) को नारा करन पाते, अपने
केवल ज्ञान के प्रकाश से मूय और बंधमा का
निम्तज करनयाने और युद्ध शानि बलहा का नारा
करन वाल, ऐसे सिद्धा का मुके शरण हो ॥ २८ ॥

उत्तलदपरमवमा, दुल्लहलमा निमुक्त
मरमा । सुवखपरणरुमा, सिद्धा सरण
निरारमा ॥ २९ ॥

त्रिसरो परमवमा (अच्छ ज्ञान) प्राप्त हुआ
है, मावहप दुर्लभ काम सिद्धा है, अनेक प्रकार के
समारम्भ से मुक्त, त्रिमुषनम्प घर के, आघार

वास्तु शक्ति समान और सशस्त्र आरम्भ से रहित,
ऐसे सिद्धो का सुख शरण हो ॥२६॥

सिद्धमण्येषु शयन-महेउसाद्गुणज
शिशुशयुराशो । मेदिशिमिलतमुपसत्थ-मत्थशो
सहियम मण्ड ॥ ३० ॥

सिद्ध भगवतां के शरण से नय और वारह
अगरूप अज्ञानर कारण भूत ऐमे साधु के गुणों
का जिसने अनुराग उत्पन्न हुआ है, ऐसा भव्य
प्राणी भूमि पर अपना शक्ति प्रशस्त्य मन्त्रक नमा
कर इस प्रकार कहता है ॥३॥

जिअलोअवधुखो, कुगद् सिधुखो पारगा
महामागा । नायाइएहि सिधुसुशर-माहगा
सरख ॥ ३१ ॥

जीरसाक व बधु, कुगति रूप समुद्र का पाप
पानेगल, महामाग्यशाली और ज्ञानादिकों की
आराधना से, मोक्ष के सुख को साधनेवान्, ऐसे
साधुओं का मुझे शरण हो ॥३१॥

केंदरलिणो परमोही, विउलमई सुअडरा
जिणमयम्मि । आयगियउवज्झाया, ते सव्व
साहुयो सरण ॥३२॥

केवल ज्ञान पाने प आरधि ज्ञान वाले, विउल
मति मनपर्यय ज्ञानवाने पय, भूतवर, जिनमत में
रहे हुए जो आचार्य उपाध्याय हैं, उन सब साधुओं
का मुझे शरण हो ॥३२॥

अनन्तमदसनरपुन्वी, ।

गिणो जे अ । जिखकप्पाहालदिथ परिहा
रनिसुदिसाह् अ ॥३३॥

चौदह पूर्वी, दरा पूर्वी और नव पूर्वी तथा
थारह व ग्यारह अम के चारख करने वाले एवं
जिनकल्पा, यथा लदा, पफिरयिगुद्ध चारित्र वाले,
ऐसे साधुओं का मुकेशरण हो ॥ ३३ ॥

सीराअथमहुथासब, समिन्नसोअहुदुदी
अ । चारखवडि उपयाणुसारियो साहुणो
सरण ॥३४॥

सीराअथ, मथ्याअथ, समिन्नओत, कोष्ठयुद्धि,
अर्षा व यिजा चारण, वैकिय और पदानुसारि, इन
सन्धिर्षा वाले साधुओं का मुकेशरण हो ॥ ३४ ॥

उजिभ्यवदरविरोहा, निज्चमदोहा पमत-

मृहमोहा । अमिमयगुणमदोहा हयमोहा
माहुणो सरण ॥३५॥

निहोने घेर वितोष का त्याग किया है, जो कभी किसी का झोह नहीं करने, अतिशय शाक्त मुग की शोभा वाले, गुण के समूह का निहोने बहुमान किया है और जो मोह के विनाशक हैं, ऐसे साधुओं का मुझे शरण हो ॥ ३५ ॥

खडिअमिणेहदामा, अशामधामा निना
मसुहकामा । सुपुरिसमणामिरामा, आयारामा
मुणी सरण ॥३६॥

निन्दाने स्वरूप बंधन को तोड़ दिया है एवं जो निबिधर वाले स्थान में खने वाले और निर्भरार गुणों की इच्छा करने वाले हैं, तथा

सत्पुरुषों के मन को आनन्दित करने वाले और
आत्मानन्द में रमण करने वाले हैं, ऐसे मुनियों
। मुझे शरण हो ॥ ३६ ॥

मिन्दिहश्चिसयक्रमाया, उम्भिसघरघर
शिमगसुहमाया । अश्लिश्चहरिमविमाया,
साह मरण गयपमाया ॥३७॥

दूर गिये है विषय और कषाय जि होने, एष
पर तथा छा, सब व ले सुत्र को भी जि होने त्याग
शिया है, ऐसे हर्ष और रिपाद में तम्य न
होने वाले एष प्रमा से रहन, ऐसे साधुओं का
मुझे शरण हो ॥ ३७ ॥

हिसाइदोसमुएणा, कयकारुएणा सयशुरु
प्यएणा । अचरामरपहरुएणा, साह मरणसुक-

यपृण ॥३८॥

हिंसादि दोषा से रहित, करुणामान धाले,
स्वयंभूरमण समुद्र के जेमी उत्कृष्ट विशाल युधि
धाले, जरा और मरण से रहित, ऐसे मोक्षमार्ग मे
जाने धाले और अनिश्चय किया है पुण्य जि होने,
ऐसे साधुआ का मुझे शरण हो ॥ ३८ ॥

कामविड पणचुका, कलिमलमुवा विमु
षचोरिका। पात्रयमुग्यरिका, माहृगुणरयण
विधिना ॥३९॥

काम की विह्वना से रहित, पाप कर्म रूप रज
(मैल)से रहित, चोरी का त्याग करने धाले, पापरूप
रज के कारणभूत ऐसे मैधुन से रहित और साधु के
समाधि गुणरूप रत्ना से दीप्तिमंत, ऐसे साधुआ का
मुझे शरण हो ॥ ३९ ॥

मरण पवन्नोह ॥४६॥

जिसमें काम का उन्माद शांत हो जाता है, देखे हुए और नहीं देखे हुए पदार्थों में पिसने किन्ही तरह का विरोध नहीं किया है और जो मोक्ष के गुण रूप फल को देने में अमोघ (निष्फल न होने वाला) है, ऐसे धर्म का मैं शरण स्वीकार करता हू ॥ ४६ ॥

नरयगडगमणरोहः, गुणमटोह पवाइनि
करोह । निहणियवम्महजोहं धम्म, सरणं
परओह ॥४७॥

नरक गति के गमन को रोखने वाला, सद्गुणों के समूह वाला, महान् में महान् भी अर्थात् वादिया लाभ नहीं पाने वाला, आर काम रूप गुणमट

(२६)

को नारा करन वाला जो धर्म है, उसको मैं
शरण स्वीकार करता हूँ ॥ ४७ ॥

भासुरसुरन्नसु दर—रयखालकारगारय
महाय । निहिमिन् दोगचहर, धम्म जिणदेमि
अ षदे ॥४८॥

वृद्धिप्यमान उत्तम शब्दात् से स्तुति किया
गया, सुंदर अलंकारादि की रचना से शोभायमान
महत्त्वता का कारणभूत महामूल्य वाला, निधान की
तरह अज्ञानरूप दरिद्रता को नारा करने वाला ऐसा
त्रिनेश्वर भगवान् द्वारा कहा हुआ जो धर्म, उसको
मैं बंदन करता हूँ ॥ ४८ ॥

चउसरणगमणसंचिथ्र—सुचरि यरोमच

श्रुत (ज्ञान), धर्म, मघ और साधु, इनके विषय में शत्रुभाव आदि से जो कुछ पाप किया है, और अठारह पापस्थान आदि अन्ध पापस्थानों में से जो पाप लग है, उनमें मैं अभी गुरु की साही से निन्दता हू ॥ ४२ ॥

अन्नेसु अ जीवेसु य, मितीवरुणाइगो
अरसु कय । परिभारणाइ दुक्ख, इण्ह गरि
हामि त पार ॥ ४३ ॥

जब हमारे मैत्री और करुणादि के विषय वाले जीया को जा परितापनादिक दुःख दिया हो, उस पाप को मैं इस समय गुरु की साही से निन्दता ॥ ४३ ॥

जं मणवचयकाण्हि, कयकारिअ, अणुमइहि

थायन्थि । घम्मविरुद्धममुद्ध , सत्रं गरिहामि
तं पाप ॥५४॥

मन घचन और कथा से करन परान और
अनुमोदने द्वारा थापरित किये हुए धर्म से विरुद्ध
और अशुद्ध जो पाप, उसकी मैं गुरु साहि से
निष्प करता हू ॥ ५४ ॥

अह मो दुषडगरिहा—दलितकस्ट
दुस्सडो पुड भणइ । मुक्कडाणुरायममुइन्न-
पुन्नपुलयदुरकरालो ॥५५॥

अथ हुक्क्या की पिदा से चूर्ण कर दिय हैं
कस्त (महान्) दुष्कृत (पाप कर्म) जिनसे और
सुख्या का जो प्रेमभाव उससे विफसर हुई
है परित रोमरानी जिसकी ऐसा जीव नीचे गच्छ
स्पष्ट कहता है ॥ ५५ ॥

(३४)

अरिहत्त अरिहत्तेसु, ज च निद्वत्तणु च
मिद्वेसु । आयात्त थापरिण, उरग्गकायत्त
उरग्गकाण ॥५६॥

माहूण साधुचरिण, दमणिग्ग च मात्त
यत्तणुण । अलुमन्ने मग्गेयि, मम्मत्त मम्म
दिट्ठीण ॥५७॥

जा अरिहत्ता म अरिहत्तपत्ता, सिद्धा मे सिद्ध
पत्ता, आचार्यो म आचार्यपत्ता, उपाध्यायो मे उपा
ध्यायपत्ता, साधुओ म साधुचरिण, आधरपत्ता मे
अधिरत्तिपत्ता और समवित्तदृष्टिया मे समवित्त
। हे, उन सबका मैं अनुमोदन करता
५ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥

अह्ना मध्व चिय वीथ्र-रायवयणाणु
मारि ज मुकड । फालत्तण रि विविड, अणु
मोणमो तय मध्व ॥५८॥

अथवा धातरामदत्तन व अनुमार जो वा
दुकुन (धम मा यन) सान्ना काल म किया हो,
हमको मन वचन और काया से अनुमोदन
करते हैं ॥ ५८ ॥

सुहपरिणामो निधः चउमरणगमाइ
आयर जीरो । कुमलपपडीउ वधट, पद्धाओ
सुहाणु वधाउ ॥५९॥

हमेशा शुभ परिणाम वाला जाय, अद्विष्टा-
न्धि चार वे शरण आन्ति का आचरण
शुभ प्रकृतिया से वाधता है, और

(३६)

प्रकृतिया वर्धी हुई हो, उनको शुभ अनुभववाला करता है ॥ ५६ ॥

मदाणुमात्रा नद्धा, सिव्याणुमात्रा उ कृणु
ता चेर । अमुहाउ निरणुत्राउ, कृणु
ति राउ मदाओ । ६०॥

जो शुभ प्रकृति मंद रसवाला बाबी हो तो उसको तीव्र रसवाली करता है । अशुभ प्रकृति जो मंद रसवाली बाबी हो, उसको अमृदु रसवाला करता है और अशुभ प्रकृति तीव्र रसवाली हो, उसको मंद रसवाला करता है ॥ ६० ॥

ता एय कायत्र, बुद्धि निघ पि मन्त्रिने
मि । होइ विराल मम्म, अमन्त्रिलेमधि
१७ ॥६१॥

इसलिए बुद्धिमान मनुष्य ने सकलशम अथवा
 रोगादि षट्पदों के समर्थन के चार शरणांशों का आच-
 रण हमेशा (निरन्तर) करना । पर अमकलेश में
 भी तानों का आचरण किया हो तो सुकृतफल
 शायद गति पुण्यानुग्रहों पुण्य से उत्पन्न होता है ॥

चतुरगो त्रिगुणधर्मो, न ऋषो चतुरग
 मरणमपि न कथं । चतुरगभयच्छ्रेष्ठो, न
 कश्चो हा ॥ हारिश्चो जन्मो १.६२॥

हा, बड़े वेद की बात है कि—

जिस जाति में ज्ञान शील तप और भाव, इन
 चार अंगवाले श्री जिन धर्म का आराधन नहीं किया
 गर्व अरिहतादिक चार प्रकार के शरणांशों भी
 आराधन न किया, चार गति रूप संसार का छेदन

(३८)

जिसने नहीं किया वह जीव मनुष्य जन्म हार गया
समस्तना ॥ ६२ ॥

इय जीव ! पमायमहादि, वीरभद्र तमेय
मङ्गलयण । भाएमु तिम भूमवभूत्तारण
नि गुरसुहाय ॥ ६३ ॥

इस प्रकार है जीव । प्रमाररूप महान् शत्रु को
जानने वाला, मोक्ष को देनेवाला और मोक्ष के
रुपय का अग्रध्य (निरुक्त न हो, जैसे) कारण भूत,
ऐसा इस अध्ययन का तीनों सध्या में ध्यान
कर ॥ ६३ ॥

इति श्री चउमरल पयत्रा समाप्त ।

आउर पंचखण्डपयन्ना

(हिंदी अर्थ सहित)

शुरू म तीन आंगिल करके इस सूत्र को पढ़ना



देनिक्रदेसगिग्धो, सम्मदिट्ठी मरिड
जो जीवो । त होइ मालपडिय-मरण जिण
सासणे भणिय ॥१॥

इ कायों की हिमा म जो तस हिंसा है,
उसका एक दश जो मारन की बुद्धि, उससे निरप
राधी जीवों की निरपक्षपने से हिंसा करना उससे,
तथा असत्य वचनों से निवृत्त होते हुए जो सम

मितं त्रिं चीम मरे, उस मरण को त्रि
धातुपटित मरण कहा है ॥ १ ॥

एच य श्रुणु-वयाद् , सत्त उ
त्सजद्धम्मो । सज्येण व टसेण व,
होइ नेसर्ई ॥२॥

चिनशासन मे सरगिरति और द
मे प्रकार का धर्म कहा है, उसमे सरगि
महाव्रत है और देशविरति के पाच अ
सात शिशाव्रत ये शायक कं वारह अ
वारह व्रतों से युक्त अथवा इनमें से
भी हा तो शायक उन वारह व्रतों का
युक्त होने से देशविरति होता है ॥ २ ॥

सह स्रुणु स्रुणु स्रुणु स्रुणु स्रुणु

१ शिशाव्रतसुमासुणु । १० । २

हैं। स्वयं किये हुए पापों को पडिक्कमता हू। दूसरे से कराये हुए पापों को पडिक्कमता हूँ। अनुमोदन किये पापों को पडिक्कमता हू। मिथ्यात्व को पडिक्कमता हू। अतिरिक्ति को पडिक्कमता हूँ। कर्वाय को पडिक्कमता हूँ। पाप व्यापार को पडिक्कमता हू। मिथ्या दर्शन परिणाम में, इस लोक में, परलोक में, सचित्त में, अचित्त में, पापों इन्द्रियों के विषय में, अज्ञान अन्धता ७ ऐसा विचार हो, झूठा आचार विचार हो, बौद्धादिक दर्शन अन्धता ऐसा विचार हो, क्रोध के बराबर विचार हो, मान के बराबर विचार हो, माया के बराबर विचार हो, लोभ के बराबर विचार हो, राग के बराबर विचार हो, द्वेष के बराबर विचार हो, अज्ञानपन से विचार हो, पुद्गल पदार्थ और बराबर आदि को अन्धता के आधीन हो कर विचार हो, मिथ्यादृष्टिपन से विचार हो,

मूल्यांश विचार हो, संशय से विचार हो, अन्य
मतमहण की इच्छा से विचार हो, गृद्धि (अत्या
मति) से विचार हो, दूमरे का यस्तु प्राप्त करने
की आशा से विचार हो, कृपा लगने से विचार
हो, भूय लगने से विचार हो, सामान्य मार्ग में
चलाते हुए विचार हो, नियम मार्ग में चलाते हुए
विचार हो, नीद में विचार हो, निषाणों का विचार
किया हो, स्नेह के आधीन विचार हो, काम विचार
के आधीन विचार हो, चित्त की व्यग्रता से विचार
हो, कटाह करने कराने के लिए विचार हो, सामा-
न्य युद्ध के विषय में विचार हो, महान् युद्ध के विषय
विचार हो, मग करना चित्तवन किया हो, समझ
करना विचार किया हो, रात समा में न्याय करने
के लिए विचार हो, सरीदने और बेचने के लिए
हो, अनर्थ में विचार किया हो, उप

योग (इष्टदे) पूर्वक विचार हो । काम इष्टदे रहित अनुपयोग (न्यामाधिक संरूप विकल्प) से विचारा हो, देनहारी से आधीन होकर विचारा हो, वैरभाव से विचार किया हो, तर्क विवर्क पूर्वक विचार हो, हिंसा का विचार किया हो, हास्य के बरा विचारा हो, अतिहास्य के बरा विचारा हो, अति रोष से विचारा हो, कठोर पापकर्म विचारा हो, भय विचारा हो, रूप विचारा हो, अपनी प्रसशा विचारी हो, दूसरे की निन्दा विचारी हो, दूसरे की गर्हा (जाहिर निन्दा) विचारी हो, घनादिक परिग्रह प्राप्ति का विषय विचारा हो, दूसरे की निन्दा करने का विचारा हो, दूसरे के दुष्ण तलाशने का विचारा हो, आरम्भ विचारा हो, विषय की तीव्र अभिलाषा रूप सारम्भ विचारा हो, पापकर्म का अनुमोदन रूप विचार किया हो जाय हिंसा के साधनों को प्राप्त करने का

विचार हो, असमाधि से मर जाना ऐसा विचार हो, गान्धर्व कर्म के लक्ष्य से कष्टादि के समय अशुभ भाव विचार हो, शक्ति के अभिमान से विचार हो, अग्ने भोजन प्राप्ति के अभिमान से विचार हो, गुरु के अभिमान से विचार हो, अतिरिक्ति अक्षी है ऐसा विचार हो, संसार गुरु की अभि-
लाषा पूर्वक मरण वचना विचार हो—

पशुसस्त वा पडिपुदस्त वा जो
मे कोई देगमियो राह्यो उचमह् अइकमो
वइकमो अइपारो अणायारो तस्त
मिच्छामि दुक्कड ।

मेरे इस अन्तर्धान में पूर्वोक्त प्रकार से दिवस
संबंधी या रात्रि सम्बन्धी, सोते हुए या जागते हुए
भी अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार अनाचार

लगा हो, उसका मुँह मिथ्या दुष्कृत हो ।

एस करेमि पणाम, त्रिभुवरयसहस्र
षट्पदायस्स । सेसाय च त्रिखाय, सगण-
हराय च संधेमि ॥ ११ ॥

यह मैं त्रिनेश्वरों में श्रेष्ठ शुभम समान भी
षट्पदान्त दयाही को और दूसरे गणधरों के साथ
सभी तीर्थहारा को नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

सुख्य पाणारम, पयक्कामिच्छि अलिय-
वयण च । सुख्यमदिन्नादाय, मेहुण परि-
ग्गह चेष ॥ १२ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियों की हिंसा के आरम्भ
को, असत्य वचन को, सब प्रकार की
मैथुन को और परिग्रह को मैं

(६४)

सहित शक्त उपधि (माया) की मैं आलोचना करता हूँ ॥ ३१ ॥

जह रालो उपतो, क जमरुज्ज व
उज्जुभ भखइ । त सह आलोइज्जा, माया
मयविप्पमुडो य x ॥३१॥

ऐसे बापक बोलता हुआ शर्य और अकार्य
के सरल भाव से यह देवा है, वैसे माया और
मद (अभिमान) को छोड़ कर सरल भाव से
पत्नों के आलोचना चाहिए ॥ ३२ ॥

नाथमि दसणमि य, तवे चरित्ते य
चउतुवि अरुपो । धीरो आगमकुसलो, अप
रिस्ताशी रहस्साय ॥३३॥

x "मायामोक्ष प्रमुत्तूण" भाग और मूँठ क दोड़ के ।

ज्ञान दर्शन और तप चारित्र, इन चारों में
अचलायमान, धीर, और आत्म में कुराहण पर
अपने कहे हुए गुण पापों को दूसरे के धागे नहीं
कटने वाले, ऐसे गुरु के पास आलोचना लेना
चाहिये ॥ ३३ ॥

रागेण न दोसेण च, ज मे अकयन्तुया
पमाएण । जो मे निचि नि मणियोः । तमह
तिरिहेण रामेमि ॥३४॥

राग द्वेष पं वरा या अकृतज्ञता से और प्रमाद
पश होकर आपका जो कुछ अहित दूसरे को मैंने
बहा दो, वह मन, धन और कथा से क्षमाता हूँ ॥

तिरिह मणति मरणं, बालाद्य नाल
पट्टिपाण च । तदप-पट्टिपमरणं, ज कर

मे पारधमण करता है ॥३८॥

कदप्पदवमिन्त्रिस-श्रमियोगा आसुरी य
समोहा । ता देवदुग्गइश्रो, मरखम्मि तिरा
दिए हृति ॥३९॥

मरण का प्रियवना करने से कदपदव, मिन्त्रि
पिन्दव आभियोगिक (चार) दव, अगुर
(परमाधामि आदि दुष्ट) जातीय देव और समोह
(मूलादि-सुनूहरामिय) दव, इन नीच जाति के
देवों की पाच दुगनिया होती है ॥ ३९ ॥

मिच्छादमखरत्ता, सनियाणा रिणहलेम
मोगाढा । इह वे मरति जीवा, तेसि दुलढा
बोही ॥४०॥

इस मंसार के अन्तर मिथ्यादर्शन में आसक्त हुए, नियाग करके वगैर कृष्ण लक्ष्या में धाते हुए जो जीव मरने हैं, उनको समझना दुःखम होता है ॥

मम्मद मणरगा, अनियाणा शुक्ललेम
मोगादा । इह ते मरति जीवा, तेमि सुलहा
भवे मोही ॥४१॥

इस मंसार में सम्यग् दर्शन में आसक्त हुए तथा नियाणा रहित शुक्ल लक्ष्या में धरते हुए जो जीव मरने हैं, उनको समझना दुःखम होता है ॥४१॥

ले पुष्य गुरुभडिणीया, बहुमोहा सम
भला कुर्माला य । अममाहिणा मरति, ते
इति अखतसमारी ॥४२॥

ता एव पि मिलोम, जो पुरिसो मरण
नमशालम्भि । आराध्णोपडतो चित्तो-
राहयो होइ ॥६०॥

स लिय जो पुरुष मरणात् समय म धारा
जना के उपवागवाला होइ एर भी श्लोक चिनघना
रहे तो यह पुरुष आराधन हाता हे ॥६०॥

आराध्णोपडतो, काल राउण सुवि-
हियो सम्म । उयोम त्रिभि मवे, गतूण
सहइ निराण ॥६१॥

आराधना करने के उपवाग वाला और अच्छी
आचरण वाला जीव थन्डा तरह आराधना पूर्वक
परके इंद्रपुत्रसे तान भय में आ परके मोक्ष
करता हे ॥ ६१ ॥

समणु चि अह पढम, नीय मुब्त्थ
मनयोमि।चि । सव्व च वोत्तिरामि, एय
मणिय समासेण ॥६२॥

प्रथम तो मैं साधु हूँ और दूसरा अर्थ पदार्थों
म संयम पाता हूँ इस लिये मैं सबको बोत्तिरता हूँ।
यह आरावना निषय सत्तेप से कहा गया ॥ ६२ ॥

लद्ध अन्नद्वपुब्ब निणययण सुमासिय
अमयभूअ । गहियो सुग्गहमग्गो नाहं मर
णस्म षीहमि । ६३॥

जिनश्वर भगवान् क वचन रूप सुभाषित
(उत्तम उपदेश) की अमृत के समान; मधुर और
पहले कभी नहीं पाया था, ऐसे मैंने प्राप्त किया

और सिद्धि रूप सद् गति का मार्ग ग्रहण किया है,
निससे अथ मैं मरण से डरता नहीं हूँ ॥ ६३ ॥

धीरेण वि मरियन्व, निद्विरेण वि अर-
स्य मरियन्व । दुएहपि हु मरिअन्वे, धर सु
धीरसणे मरिउ ॥६४॥

धार पुरुष का भी मरना पड़ता है और
अधीर पुरुष को भी अक्षय मरना पड़ता है ।
दोनों का भी निश्चय मरना ही है, तो गीतान से
मरना यह निश्चय करके अन्धा है ॥ ६४ ॥

मीलेण वि मरियन्व, निस्मीलेण वि अर-
स्य मरियन्व । दुएहपि हु मरिअन्वे धर सु
सीलसणे मरिउ ॥६५॥

१ वाग्निसेण (कायर पुरुष)

शील वाला भी मरता है और कुशीलवाला भी अवश्य मरता है । दोनों, को भी निश्चय मरना ही है, तो शीलपने से मरना अधिक अच्छा है ॥६५॥

नाणम्य दसणस्स य, सम्मत्तस्स य
चरित्तजुत्तमस्स । जो काही उद्योग, ससारा
मो निम्बुच्चिदिमि ॥६६॥

जो कोई मनुष्य चारित्र्य सहित विगोप बोध स्वरूप ज्ञान का, सामान्य बोधस्वरूप दर्शन का और तत्पर्याय श्रद्धानिरूप सम्यक्त्व का उपयोग रवेगा यानि ज्ञानादि की आराधना में सावधान रहेगा वह ही विगोप करके ससार से मुक्त होगा ॥ ६६ ॥

चिरउसिय बमयारी, पप्फोडेऊणु सेसण

कम्म । अणुपुण्ड्रो विसुद्धो, गच्छइ सिद्धि
धुपत्रिलेमो ॥ ६७ ॥

बहुत समय, सब ब्रह्मचारी पन में नियास
क्रिया है निसने ऐसा जाय बाका के सब कर्मों का
नाश करे सव जलेशा से रहित हुआ अनुक्रम से
विशुद्ध होकर निवृत्तिगति में जाता है ॥ ६७ ॥

निव्रमायम्म दतस्स, सुस्स वधमाइणो ।
समासपरिभीयस्स, पच्चस्सराण सुइ मध ॥ ६८ ॥

व्रणाय रहित, दाव (पाँच इंद्रिय और छः
मन, इनको दमन करने वाले) शूरवीर, उगमन
और ससार से मयघात होना चाहते मनुष्य ।

पञ्चम्याण सन्दा होता है ॥ ६८ ॥

एय पञ्चम्याण, जो सार्ही मग्णदस
कालम्मि । धीरो अमूड मन्नो, नो गच्छइ
उत्तम टाय ॥ ६९ ॥

धीर और अमूड सहा (बराबर रयालात) वाला
जो मनुष्य मरण के समय यह पञ्चम्याण करेगा
यह मनुष्य सिद्धि गतिरूप शुभम स्थान को पावेगा ।

धीरो अरमरणविड, धीरो विनाणनाण-
मपद्धो । लोगस्सुज्जोअगरो, दिग्गउ रय
मध्वदुक्कयाण* । ७० ॥

धैर्यता वाले, जरा और मृत्यु को जानने वाल

* दुस्सियाण दुस्सिणो (पापा) का

(८६)

विद्यान और ज्ञान से संपन्न (युक्त) एवं समग्र लोको
म उद्योत के करने वाले ऐसे धीर विनेश्वर हमारे
मध्य दुःखों का क्षय करे ॥ ७० ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

पापप्रतिघात-गुण- बीजा-धानसूत्र

णमो धीश्ररागाण, मध्वन्नूण, देविद-
पूद्भाण, जहट्टिठयक्युवाईण, तेलुक्कगुरूण,
श्ररहताण, भगवताण ।

। धीश्रराम्, सर्वज्ञ, इवेन्द्रा से पूजित, यथा
स्थित यस्तुनत्यवादी श्रौर त्रैलोक्य गुरु ऐसे श्ररि
हत भगवतां को नमस्कर हो ।

जे एवमाइकर्त्तति-इह खलु अणाइ जीवे, अणाइ जीव-
स्त भवे, अणाइकम्मसजोग निच्चिए दुक्क-

धम का शक्ति निर्यात्कम इनका शक्ति पार दोनों
 धरिन्का हानि से हाना १, शक्ति धरि कर्मका
 शक्ति (विना) तथा शक्ति (धम शक्ति के)
 मन्त्रका शक्ति से, धनी मन्त्रका शक्ति का शक्ति
 शक्ति २, निर्यात् (शक्ति का शक्ति) ३, पूर्वकृत शक्ति ४
 धरि पुष्पादि (शक्ति) ५ इन धरि शक्ति के
 शक्ति से हाना ६ ।

तम्प पुष्प निरागमाहर्याणि धउमाल-
 गमण, दुष्कडमगिहा मुष्टाणुसंयम् ॥

और इस मन्त्रका शक्ति शक्ति के मा शक्ति—
 शक्ति शक्ति धरि शक्ति का शक्ति शक्ति की
 शक्ति शक्ति शक्ति, और शक्ति का शक्ति शक्ति शक्ति
 रूप होते हैं ।

अन्नेसु वा धम्महाणेषु माणसिज्जेसु पूयणिज्जेसु
 तथा मारुसु वा पिइसु वा व धुसु वा मिच्छेसु
 वा उरपाणिसु वा ओडेण वा मग्गजीवेषु,
 मग्गहिणेषु अमग्गट्ठणम मग्गमाहणेषु अ-
 मग्गमाहणेषु, न किंचि पितहमायणिय अण्णा
 यरिअत्त अण्णित्थिअत्तत्त वाय वावाणुरधि
 मुहूम वा नायर वा, मखेण वा वायाए वा
 काण्ण वा, क्य कारानिय वा अणुमोइय वा,
 राणेण वा दोसेण वा मोहण वा इत्थ वा
 जम्मं जम्मतरेसु वा, गरहियमेय दुवडमेय
 उज्जिमयव्वमेय विपाणिय मए-वञ्ज्जाणमिच
 अग्गवत्तवयणाओ एवमेत्थति रोइय सद्धाए,

अरिहंतमिदममकम गग्दामि अहमिण,
दुक्कडमेयं उज्झियन्ममेय इत्य मिच्छाम
दुक्कड मिच्छाम दुक्कड मिच्छामि दुक्कड ॥

उक्त आण शरण्य श्रीगार कर ने मैं पापों का
गहो (जाहिर निंदा) करता हू । अरिहंत मिद
आगर्य उवाध्याय साधु सा ग या दूसर भी धर्म के
स्थानभूत माननीय पूजनीय ऐसे गुणाधिक आत्मा
ओं के प्रति, तथा मानापिता उधुमित्र या उपकारक
जना के प्रति या ओधत (मामा-यतया-मार्ग स्थित
(समरित आदि युक्त) या अमाग स्थित (समकित
आदि से रहित) ऐसे सब जापा के प्रति, मार्ग के
साधन पुस्तक आदि के प्रति अमार्ग के साधन
गद्ग दिक् के प्रति मैंन जो जो कुछ विपरीत
अविधि, भोगादिक से नहीं आचरने योग्य,

"इ न याग्य, ण्मा पापानुद्धा पाप मूलम् । या
 म्भूल, मन वचन या वाया से, राग द्वेष या मोह से
 "स च म म या श्रय ज मा म क्रिया, कराया या
 अनुमान्न क्रिया हो यह पाप कथाणमित्र भग
 शान गुरुद्वेष के वचन से मैन निरा के योग्य और
 त्याग करने के योग्य जाना है । यह ऐसे ही है ऐसी
 शब्दा से यहाँ बात मुझे पसर आई है, इस लिये
 अरिहत और सिद्ध की समस्त यद् दुष्कृत (पाप)
 है और त्याग करने योग्य है, उस प्रकार गद्दा
 (निरा) करता हूँ । इस निपराताचरण सम्बंध से
 क्रिया हुआ मेरा पाप मिथ्या हो, मिथ्या हो, मिथ्या
 हो, अज्ञान मेरा पापों को निवर्द्धन कर के उसकी
 समायाचना हूँ ।

होउ म, ण्मा मम्म गरिदा, हेउ मे

अकरणनियमो, बहुमयं ममे अति इच्छामो
 अणुमटिंठ अरहताणं मगर्वताणं गुरुणं
 कल्याणमिच्छाणं ति ॥

यह मेरी दुष्कृत (पापों की) गद्दा अच्छी तरह शुद्ध भाव से हो । बार बार ऐसे पाप न होने पावे तेना नियम मुझे हो, ये दोनों ही ध्यात-मुझे बहुत पसन्द आई है इसलिये अरिहंत भगवत्ता की तथा कल्याणमित्र ऐसे गुरुवर्षों की हितशिखा को मैं इच्छता हू ।

होउ मे एएसिं संजोगो होउ मे एसा
 सुपरथणा, होउ मे इत्थं बहुमाणो, होउ मे
 इत्थो गुरुस्वीयं ति ॥

मुझे इन अरिहंतादिक के साथ संयोग (समा

गम) हो, मुझे ऐसी अच्छी प्रार्थना करने का समय प्राप्त हो, इस प्रार्थना में मेरा बहुमान [आदर] -त्व न हो और इस प्रार्थना से मुझे मोक्षपीठ [कल्याणकारक सफल साधन भाग] प्राप्त होव ।

२ पत्तेशु, एएशु शब्द सेवारिह मिया, ध्याहारिहे मिथ्या, पडियत्तिजुगे मिथ्या, निर इधारपारगे सिथ्या ॥

अरिहतादिक का गुणयोग प्राप्त होने पर मैं उनकी सेवा करने लायक होऊँ, अपना पालने लायक होऊँ, सेवा मिले युक्त होऊँ और दीप रहित उनकी धम्मा का पारगामी होऊँ अर्थात् उनकी धम्मा को संधार्थ पालन कर के संसार को पार कर पाऊँ ॥

३) सविग्गो जहासत्तीण सेवेमि सुग्ग,

अणुमौष्मि मन्वेमि अरुहतासु अणुट्ठाणं,
 मन्वेमि मिद्रासु मिद्रभाच, सन्वेमि आयरि-
 यासु आयार, मन्वेमि उवज्ज्जायासु मुनाप्प
 यासु, सन्वेमि माहूण मादुरिरिय । सन्वेमि
 साग्गासु सुक्खसाहल्लज्जोग, मन्वेमि दग्गाण
 मन्वेमि जीगासु होउकामासु कन्लाणासया
 ण मन्वेमि साहग्नोगे ॥

कवन मोक्ष का अभिलाषा याला होकर और
 यथाशक्ति यानि अपनी शक्ति को बिना छिपाये मैं
 तुम्हें सेवा सेवन करू । मयें अरिहंतों के अनुष्ठा
 (धर्म देशनात्मिक) का मैं अनुमोदन करता हू ।
 ऐसे हा सब सिद्धा के सिद्धभाषों का, मत्र आचार्यों
 के आचारों का, मत्र उपाध्यायों के मूत्र प्रदान का

सब साधुजनों की साधुक्रिया का, सब भावकों के मोक्ष साधन योग का, जैसे ही इंद्रादिक सब देवों के और निकटभवी गुरु आशयशाले सय जीवों के मोक्षमाय के साधन योगों का मैं अनुमोदन (प्रशंसा) करता हूँ ।

होउ मे एसा अणुमोअणा सम्म विहि
पुव्विया सम्म सुद्धासया सम्म पडिपारिहूवा
सम्म निरइथारा परमगुण अरहताइ साम-
अचित्तमच्चिजुथा ते हि भगवतो वीय-
मव्वन्नु परमकल्लाणा परमकल्लाण
हेऊ सचार्यं मूढे अम्हि पावे अणाइमोहवा-
मिण अणमिन्ने माअओ हियाहियाणं अमि-

ध्ने मिया अहियनिउचे मिया हियपवने
 मिया आराहगे सिया उचियपडिधसीए सव्व-
 मचाए सडिय ति इच्छामि सुकड इच्छामि
 सुकड इच्छामि सुकड ॥

यह उपरोक्त गुह्य की अनुमोदना मेर लिये मध्यग
 विधि पूर्वक, सर्वे शुद्ध आशय से सम्यग् आच-
 रण रूप से यथां पालन करना और उसका
 यथार्थ निर्वाह निरतिघार भाव से होना, ये सब
 परम गुणयुक्त श्री अरिहतादिक के प्रभाव से हो ।
 क्योंकि अचित्त्य शक्तियाले वे भगवत, धीनराग
 सर्वज्ञ परम कल्याणरूप होकर मध्यजनों के लिये
 परम कल्याण के हेतुभूत होते हैं । मैं मूढ़, पापी
 अनादि मोह से चासिन और अनभिज्ञ (अज्ञानी)

फलं य मुपउत्ते त्रि य महागण सुहफले सिया
 मुहप्ययत्तगे मिया परमसुहमाहगे सिया
 अप्पड्विघमेय थसुहमागनिरोहेण सुहमा-
 गशीयं ति सुप्यणिहारु सम्मपट्टियञ्जा सम्म
 सोयञ्जा सम्म अप्पेड्वियञ्जाति ॥

तथा शुभ फल के अनुबन्ध इकदूठ हान
 लगते हैं, भाव की वृद्धि से बहुत (सम्पूर्णा) होने
 लगते हैं, तथा प्रधान और शुभ भाव से अर्जित
 नियमा फलदायक खानुबन्ध शुभफल, अच्छी
 तरह प्रयोजित बौद्ध से महारोग की तरह, खानि
 उत्तम निदान पूरक बौद्धने ही हुई दया से जैसे
 महारोगों का विनाश होता है, वैसे ही एकान्त
 वारक शुभफलका करने वाला, शुभ प्रव
 परम्परामे परमसुख मोक्ष का साधक

होना है। इस लिये प्रनिषध (नियाण) रहित, अशुभ भावना के निरोध से शुभ भावना का बीजरूप समझ कर गुणनिधानरूप इस मूत्र को प्रसाध भाव की एकप्रना से अच्छीतरह पढ़ना पत्र व्याख्यान विधि पूर्वक हुनना और उसके अर्थ के रहस्य का चिन्तन करना चाहिये ।

नमो नमियनमियाण परमगुरुवीय-
रागाण, नमो सेभनमुकारागिहाण, जयउ सब्ब-
न्नुमासणं परमम बोहीए सुहिणो भवतु-
जीणा सुहिणो भवतु जीणा सुहिणो
भावतु जीणा ॥

तवि ग्याममि ॥ ८ ॥

निश्चय करके त्रिर्यंच गति के समुद्र अनर्हा प्रकार के भेद वाली प्रथिव्यादिक में, यानि सार पृथ्वीकाय अप्काय, तेजकाय, वायुकाय और प्रत्येक या साधारण धनस्पतिकाय के मधों में-मैने-अपने दूसरे या आपसा शस्त्र से-उन पृथ्वीकायादि जीवों का विनाश किया हो उसको भी मैं समाना हूँ ॥ ८ ॥

धर दिय तेइ दिय—धउरिंदियमाइखेग
मेएसु । ज भक्खिय दुक्खविया, तेवि य विवि-
हया खामेमि ॥ ९ ॥

शस्त्र आदि, वेदन्द्रिय, जू आदि तेइन्द्रिय और मक्की आदि चौरिंदिय, ये आदि अनेकों मधों में मैने
को भक्षण किये या दुःख दिया हो उसको

माँ मैं त्रिविध धरके नमाता हूँ ॥ ६ ॥

जलपरमज्मगण्य, अयोगमच्छाडरुव-
धारेण । आहान्द्रा जीवा, विष्णोसिपा तेवि
स्वामेमि ॥ १० ॥

गर्भत्र और समूर्त्तिम जलपर पचेद्रिय के
मया मैं मच्छ, कच्छप, गुगुमार आन अतक
को का धारण करके मैंने आहार के लिए चिन
पाया । को विनाश किया हो, उनको मा मैं
नमाता हूँ ॥ १० ॥

द्विन्ना भिन्ना य मए, बहुसो दट्टूण
रहुविटा जीवा । जलपरमज्मगण्य तेवि य
तिरिहेस स्वामेमि ॥११॥

उलचर उ म म में न बहुत प्रकार के नीचा
का दृश्य कर उनका अन्तका प्रकार म छद्म भन्त
फिया हा उमका भा में शिथिल करण समाता है ।

मप्यमरिमरमज्मे धानर मज्जार मुण्ड
मरमसु । ज जीवा उलरिया, दुग्धिता तेवि
स्वामेमि ॥ १० ॥

गभज और समूर्त-खम मर्ष आदि सरिन्व
धान रपरि मर गोर पात्र आदि भुगपरि मर्ष
बीजा सुत्त तथा शरभ (अप्यपद) आदि धलचर
पचद्रिया, इन त्रियंचा के भयो म में न जा जीवा
का छद्म भन्तारि द्वारा दुग्धी करके विह्वना पर्यक
प्राये हो उन को भी मैं समाता हूँ ॥१०॥

सद् लमीद्गदय जाहसु वि नीरघायन

णिगासु । जे उवरत्तिया मए, रिखासिया ते-
वि खामेमि ॥ १३ ॥

चाय घातक आनि अशुभ कर्मसे मारुल (सिंह
चादि विशेष) तथा मिह (फेसरी मिह) गेंडा एव
राघ, चिन्ता, पीछ आनि जीर घात करने वाली
चतुर्पं चासि में अपन्न होकर मैंन जिन जीवों फा
ट्टन भेज्नाणि दाय विनाश किया हो उन को
भी मैं समाना हूँ ॥१३॥

होलाइगिद्वकुक्कुड-ईसरगार्दसु सउण-
सएसु । ज पुइयसेख एद्धा, किमिमाइ तेवि
खामेमि । १४ ॥

कमडा, गार, मूगा, हंस, - बगला,

राधा, बाज और चिड़ी आदि सैकड़ा प्रकार के समृद्धिमया गभज रोचर पचेद्रिय पत्तियों के भय में न भूय के बरा होकर जिन कीड आन्नि-
नीय का भक्षण किया हो उनका भी मैं
समाता ॥ १४ ॥

मणुष्मु वि जे जीरा जि भदियमोडि-
ण्य मूढस । पारद्विरमनेण विणासिया तेवि
गामेमि ॥ १५ ॥

मनुष्य के भय में भी रसनेद्रिय के बरा होकर
मूढ (अज्ञानी) ऐसे मैं न शिकार खलत हुए पिन
नीय का विनारा किया हो उनको भी मैं
समाता हूँ ॥ १५ ॥

ज मजभमममजमधु-मकाणमाइएसु

जे जीवा । सद्वा रसनोभेण, विणामिया तैवि
 स्वामेमि ॥ १६ ॥

एकद्वय के पशुद्वय शरीर, की पुष्टि के लाभ
 से मेरे जीवन मनु, मांस, मधु मक्खन एवं तीन तिन
 उपरात के आचार घोर शर्मा एटी आदि म आ
 जीव है, उन जाया का भक्षण करके उनम
 रहे हुए वेदद्वयदि जीवों का निर्गम किया हा, उन
 का भी मैं समाना हूँ ॥१६॥

५५मगिद्धेणज चिय, परदारान्सु गच्छ
 माणस । जे नृमिया, दूहरिया, तिविहेण
 तवि स्वामेमि ॥ १७ ॥

ॐ पक्षन की साहपत्रीय प्रति म यह गाथा नहीं है
 ५५ "सुखेगदिष्ण" पक्षिय" ।

अपराद्रिय क वश हाकर लम्पट ऐसे मरे जाये कया मधया या विधवा रूप पर श्री और बेरया आदि क साथ गधन करके निम नीया का दूनाय हो यानि मानामक दुग्द दिया हा या दु गित रिग हो यानि शारीरिक - य दिया हो, अतको भी मन गधन और सया से मैं भगता हू ॥१४॥

अस्तित्वादिय धार्मिदिय-भोद् द्विधधमगएण
न नीया । दूस्त्रमि मए ठविया, मेवि य ति-
दिदण राममि ॥१८॥

अनुर्ण दूय घाणेर् दूय और घायेर् दूय क वरा
राधर मैंने निम जयो को दुग्द म स्थापित किय
॥ उनको भी मैं द्विधध करके समाना हू ॥१५॥

अकमिद्वय आणा, काराविया जे उ

मागभरण । तामसभावगण्ण तरि य तिवि-
हणु ग्याममि ॥ १६ ॥

और मेर चीज न अपना मानभग हाने के
कारण उत्पन्न हुए क्रोध से जिन जीवों को दमन
करके मेरी आज्ञा मनायी है, उन सब भी मैं त्रिषिद्ध
करके क्षमाता हूँ ॥१६॥

मामिच लहीउण, ज बद्धा घाइया य
म लीया । मग्गदतिरग्गहा तरि य तिरि
हणु ग्याममि ॥२०॥

स्थायीय अथात राज्यपदादि अधिभार प्राप्त
करके मैंन अपराधी और निरपराधी जिन जीवों का
बधन किया हो और घायल किया या मारा
उनको भी मन वचन काया से क्षमाता हूँ

अथसराण् × दिन्न -मएण दुहंश-
कस्मिन्नस्म । माहण उ लोहण व, तपि य
तिदिहण गाममि ॥२१॥

दुह ऐसे मैंन वन से काच से या लोभ से
हिमी भी मनुष्य को भूना बनक दिया हो उनको
भी प्राणव परके मैं नमाना हू ॥२१॥

परभाययाइ हरिसो, पेसुअ ज फय मए
इयिह । मच्छरभावगएण, तपि य तिदिहेण
गामेमि ॥२२॥

इय्या भाव मे प्राप्त होकर मैंन दूसर किसी
भा जीव को व्यापदा ध्यान परद्वर्ष मनाया हो या

× तं जे मे, । + अ दुहेण क्माउ जियसु ।

जिन्सी का घुगली का हा तो उमकर भा में त्रापध
करके लुमता ह ॥२०॥

रुहो मुद्महायो, जाओ रोगामु मिच्छ
जाईसु । धम्मू जि इमो सने रन्नेहिं नि जय
में नसुओ ॥२३॥

अनेकों म्लच्छ नासया मे रीद्र और मुद्र ए
भाष पन से मैं अत्र हो चुका ह, यहाँ पर मैंने
धम यह राण कान से भी नहीं गना ॥२२॥

परलोपनिष्पिनासो, जीरसयाणेगघाय-
णपमत्तो । सुजायो दुहहेऊ जीराण तपि
गामेमि ॥२४॥

परलोक की पिपासा (बाहमा) रहित ॥

वमगण । अमियोग्य २ दक्षर, ज्ञाण क्षय
तरि स्वामेभि ॥ ३३ ॥

। मौधमानि नेत्रोर गत र्वमानिर देय क भय
म भी मैंने इमर का अद्वि म मत्तर (ईर्पा) करके
पर्वलोम सागर म शूष कर और मोह के घरीभूत
हो कर अथवा अमियोगिक पन से यानि मालिक
का आना के आधीन होकर मैंने निन पीषों का
दुःख दिया हो, उन को भी मैं समाता हूँ ॥३३॥

। इय चउगश्मायन्ना जे के विय पाणियो
मए यडिया । दक्षरे वा मटरिया, ते स्वामे-
भि अह मव्व ॥३४॥

इस प्रकार चारा गति में मटकत हुए मैंने
जिन कि ह जीवों को प्राण से मुक्त किये हो या दुःख

मे पटक हा, उन सबरा में चुमाता हूँ ॥३४॥ १० ;

मन्वे खमतु मज्जु, यह पि तेमि खमा
मि मध्वसिं । ज केण पि अवरद्द, वर चर-
ऊण मउभत्थो ॥३५॥

जिना भी जीव न ओ सुद्ध भी अपराध किया
हो, वे सभा मुझे खमाओ और मैं भाँडनकी
तरफ क घैर को त्याग कर मध्यस्थ भाव में बर्त्सता
हुआ उन सब चीजों को खमाता हूँ ॥३५॥

न हु मज्जु कोइ बेसो, सयणो वा इत्थ
जीवलोगम्मि । दसणनाणसहापो, इक्कोह नि-
म्ममो निच्च ॥३६॥ ११ ;

इस जीव लोग ने निश्चय करके मेरा भ्रष्टाई भी
'सी था मज्जा नडा है, किंतु दर्शा य जान मे

स्वभार धाला ऐसा मैं हमेशा चफेला और ममत्त्व
भाररहित हूँ ॥३६॥

जिगमिद्धा सरथ मे, साह धम्मो य मंगल
परमं ।- जि० नवकारो मरण, कम्मस्वय-
कारणं होउ ॥३७॥

अरिहंत सिद्ध साधु और केवली भाषित धम,
ब चार वस्तु परम मंगलभूत है, वास्ते इनका
शरण एवं जिनेश्वरदेव कथित ऐसा परमोत्कृष्ट एवं
परमोच्च महामंत्र मुझे कर्मसंयमकारण हो ॥३७॥

द्विपगुहाए नवकार—केसरी ज्ञाण
सठिओ निन्व । दुद्धकम्मदोषद्वयद्वय ताण
किं कुणइ १ ॥३८॥

जिन मनुष्यो की हृदय रूपी गुफा

रूप रेसरी हमेशा मंस्थित (स्थित) है, उनसे दुष्ट संसे आठ कम रूप हाथियों का समुदाय क्या कर सकता है ? शुद्ध नहीं ॥३८॥

गहि जल-जलण-तर-हरि-रि-सगाम-
रिमहरभयाड । नामति तकरणेण नरराग-
पहागमंतेण ॥३९॥

नरकार रूप प्रधान मात्र के प्रभाव से श्वरादि
यादि नरा पाना अग्नि चोर सिंह हाथी समाम
और सर्प के भय तत्क्षण नाश हो जाते हैं ॥३९॥

लिखमामणस्म सारो, चउदसपुण्यण
जो समुद्धारो । जस्स मणे नरकारो, ससारो
तस्म ऋ कुणइ ? ॥४०॥

जो नरकार मात्र जिनशासन का मार और

षडह पूर्वोक्त समुद्र (रहस्यभूत) है, वह नरकर जिसके मन में स्मरण प्रसर से हमेशा विग मान है उसका संसार कर क्या सकता है ? ॥४०॥

इय रामणा उ एसा, चउगइमाविअयाण
पीराण, । माधसुद्धीण महाकम्मकरयकार-
ण होउ ॥४१॥

इस प्रकार चार गति में रहे हुए जीवों के साथ भाग्यदि से की जाती यह क्षमापना महा कर्मसय को करणभूत हो ॥४१॥

सस्तर पिकुद सप्रापक श्री जिनेश्वर घुरि शिष्य

श्री जिनचन्द्रघुरि विगचित

क्षपक-शिदा-प्रकरणा

हिंदी अनुवाद सहित

१९५५

नमित्त जिणवशीरं घीरिमडेड । सस्त
सवगस्त । धम्मोवएमरुधं, कणयं उस्त-
गिय वोच्छ ॥१॥

जिनपर भगवान् महावीर को नमस्कार करके
अज्ञचित होते हुए अणुअणु माले को धैर्यता क

इतुभूत, घर्मोपदशरूप श्रौत्सर्गिक कश्च, यानि
मन, धा रक्षण करने के लिए बस्तर समान हित
गिजा स्तूगा ॥१॥

दुम्सडपरीसहोहा-मिपस्म मज्जायमुसि-
उमणस्स । आगारिगियदुसलो, खवगस्म
नियाण्डग गुरु ॥७॥

विसरिमचेठ निज्जा-मणेकनिउखो नि-
मुक्क नियकियो । निदाहिं महुराहिं, गिराहिं
अणुसासण कुज्जा ॥३॥ (युम्म)

मुक्किल से सहे जा सके जैसे कठोर परीपहों
से परामरित होने के कारण भर्यादा छोड़ देने
को होगया है मन निचका, ऐसे अणसण खाने
की विसदरा । (मरित भावना की)

(१३८)

देव्य कर इ गिनाकर सं मानसिक परिणति को
जान ने मे सुशाल एव नियामणा करने में अत्यंत
विपुण और अपने कर्त्तव्य पढ़ना पढ़ाना आदि
छाड़ दिये हैं जिहान, ऐसं गुरु महाराज स्नेहवाली
मधुर वाणी से शिक्षा दब ॥३॥

रोगायक सुविदिय !, निज्जिणसुपरीसह
य विद्वलिओ । तो निज्जुठपइओ, मरणे
आराहओ होसि ॥४॥

हं सुविदित । तू विशेष प्रकार से अति बल
वान होके रोगातकों का और परीषदों को समस्त
प्रकार से जीत ल, तो अणसण रूप प्रतिज्ञा का
निवाहित करके मरने पर आराधक होगा ॥४॥

हत्थीब्व तुम अनह—त्थिऊण आलाण-

सुभामिन मेर । हत्थिवियत्वाणीए, गुरुणो
नि य अगखेऊण ॥५॥

अहुममरिस अथी-रिऊण तेंसि च
सदुवाणस पि । अगपडिचारमे नि हु, नियग
षि परम्मुहे ठनिउ ॥६॥

अच्चतमत्तिनेऊ—हलागप पच्छगपि
पहुलोय । विपरम्मुहिय निरवज्ज-लज्जरज्जु
च तोडित्ता ॥७॥

पडिउठरिद्धिकुसुम, पत्तपरिमाहपसाहिय-
च्छाय । मममाणो सीलण, मज्जिहिसि लहु
महाभाग ! ॥८॥ (चत्तापक) ?

हे महा भाग । मत्त हाथी के तुन्ध

(हाथों को धोवन के) सर्वप्रथम मर्मोन्न मर्यादा का
 उग्रद्वार कर हस्तीपद (मंडावित) के मर्मोन्न गुरु
 न भा अयगणित (निरस्य) करके और अंगुरा
 जैसे गुरु ये सदुपदेश को भी १ मान कर, अपनी
 सेवा करने वाले अपने प्रति वार्कों को भी अत्यंत
 अग्रिणि धाने करके, अत्यंत भक्ति और देखने के
 मूसुहम में आय गुण प्रेक्षक (दर्शन करने वाले)
 लोगों को भी पतित मान्य, धाने करके और
 निर्णय ऐसी लज्जालुप रस्ता का तोड़ के इधर उधर
 भ्रमण करता हुआ तू प्रतिबद्ध यानि निरंतर पने
 से मिली हुई अद्वि रूप कृत है जिस में और
 शान हुआ अन्वयि नवविद्य परिपह रूप विस्तीर्ण
 होंया है जिसमें, ऐसे, शील (सदाचार) रूप धन
 अन्वयि नष्ट कर सलेगा ॥५८॥

‘वृद्धिहिसि समिद्धिह-भित्तिसचय च-
यस्तमि अमेम । गुत्तिरईग्ग पि इ टलि
हिसि सुगुणाग्गस्सेण ॥६॥

पाच समिति रूप घर की भीना को लडित कर
दगा, तीन गुत्ति रूप धान (कोट-बंदी या घाट) को
आती का ही चूरेचूरा कर डालेगा और उत्तम
गुणरूप दुकानों की अखी को बदल कर डालेगा ॥६॥

‘नूण न भक्कुल मअरोसिं इय लण्णप-
पापरेणुहि । अग्गु डिज्जिदिहिसि चिग्ग, मनि-
हिज्जमि वा(वा)ल्लगज्जयेण ॥१०॥

ऐसा होने पर निश्चय करके उत्तम कुल का
जन्मा हुआ नहीं है ऐसे जन्मप्रसव (ले
रूप से तेरी आत्मा मलिन हीवेगी)

(अज्ञानी) लोभ इत्थी अपवाद से बहुत बाल नम, या करगे ॥१०॥

पुषाणुभृपरायाइ-विहियसम्माणाय-
गुणाय । चुक्किहिति कुगइगइ-वडणाय अह
पिणस्सिहिमि ॥११॥

प्रथम गृहस्थ पन मे अनुभवे, ऐसे राजादिफ
से हुए सम्मान आदि गुणों से रहित हो जायगा
और पुगति रूप लड़े मे पडने से तेरी आत्मा क
विनाश हो जायगा ॥११॥

तां भद । ममीहियकज्ज-मिद्धिभिग्घा-
ओ विरममु इमाओ । कटगवेहुवमाओ, अस
माहिपयाओ इण्हि पि ॥१२॥

इम वास्त हे भद्र । इच्छित अर्थसिद्धि मे

(१३६)

अभूत और काटा गाने के तुल्य, ऐसे इस
प्रसंगीय स्थान से तू हाल भी पीछा हट जा ॥२०॥

तद् मुद्दुकुमारो इव, तुम वि अणुमरसु
सम्मज्जदीए । इण्हि वि 'मुट्, दुगाइय'—मिचार्ई
गीइया अत्थ ॥१३॥

तथा तुल्यक कुमार (बाल अमर के साधु) की
वह उत्तम बुद्धि से "मुट्, दुगाइय" इत्यादि गीतिका
(गाथा) के-अर्थ को इस समय तू भी बार बार
स्मरण कर ॥१३॥

निवाहिया हु तुमए, कोडीवयण्ज्ज-
यज्जिएसेव । अहुणा कामिणिनि वा-हये
वि कीरचमुव्वहमि ॥१४॥

बोड गमा देने की निंदा से रहित

मरह नेने इनना टाइम जाना से निर्वाहित कर लिया
 और अब इस समय एक वाकियों का निर्वाह करना
 मन्त्री नामक बना करता है, यह योग्य नहीं ॥१५॥

तिपणो महासमुद्रो तरियध्य गोपय सुह-
 पाणि । समदक नो मेरु परमाणु चिद्व पतो ॥

मान्यशाली । तुमने महासमुद्र तिरलिया है
 अब तो सिफ गोपय (गो क पग से पड़ा गया) ही
 तेरे तिरम बाकी रहा है, मेरु पर्यंत को अतिक्रमण
 कर लिया अब तो मात्र परमाणु ही आगे पड़ा है ॥

नां धीर । धरसु अर्च्यत धीरिम चयसु
 कीपयइत्तं । हरिणु कनिम्मल निय कुलं पि
 सम्म विभावेसु ॥१६॥

मान्ते हे धीर । अर्च्यत, धीर्यता को धारण

कर, नामद्वयन का प्रकृति का त्याग कर, चंद्रसमान
निर्मल ऐसे अपने कुल का भी अच्छी तरह
पिंशार कर ॥१६॥

मन्लोढःपन्लिउण, पमायपरचक्कम-
ककहलाए । मत्थर पत्थुयत्थ, जहमत्तीए
परक्कमत्तु ॥१७॥

चस काइ मन्ल प्रतिमत्त की परामत्ति कत्ता
इ वैसे प्रमाद रूप शत्रु के दल को प्कर्म परा
भक्ति करके इसी प्रकृत अणुसण रूप, अर्थ में
यथाशक्ति उद्यम कर ॥१७॥

परिमायेमुय पयइ-उ-सु दरश तहाणु-
गामिचं । भुज्जो,प, दुन्लइच,
अणुग्घाण ॥१८॥

मुह धर मरुत्त । न य लज्जणय , काड ,
जावज्जीव पि लममज्जे ॥२२॥

शू पने की जन प्रशसा से फूलाये हुए और
उत्तम कुनधान ऐसे शूरभिखानी मनुष्य को रण
मैदान में मर जाना अच्छा परन्तु यावज्जीवन
पर्यंत लज्जित होना वह जैसे मलाशय आदि धरता
योग्य नहीं ॥ २२ ॥

समगस्म माणिसो उ—ज्जयस्म नि-
हणगमणं पि होइ धर । न य नियपयइइण
भगेण, इयरज्जणपण ण्हि ॥२३॥

साधुत्व का मान धराने वाला साधु को
अपन साधुत्व में उद्यत (सावधान) रहते हुए
अगर मरण होनाय तो भी अच्छा, सुखिन अपनी

प्रतिज्ञा का भंग करके इतर (अज्ञान) जनों भरफ
की निन्दा को सहन करना योग्य नहीं ॥ २३ ॥

एवम् इह नियन्त्रिण-यस्म को जपण
करेज्ज १ नरो । पुत्रायपोचाईण, समरम्मि
पलापमाणोच्च ॥ २४ ॥

कौन ऐसा मनुष्य है १ जो एक अपने जीवित
के लिए सभ्य भूमि से भागते हुए क्यार मनुष्य
का तरह प्रजन पुत्र पीयादि पीनीया तरफ की
बदनामी को कर डाले ॥ २४ ॥

तद् अण्णो कुलस्स य, सघस्स य, मा हु
जीवियत्थाओ । कुणसु चणे वपणय, जाणि-
यज्जिणवयणमारो वि ॥ २५ ॥

कृपा जिन धचन का सार ('तत्त्व') अनिता

दुःखाभा नू लीयित वा अत्रिगपी होमर लोम म
अरना रक्त का और सघ का निश्चय बदनामा
मन न ॥१५॥

न नाम नहऽध्यायी, समारपयद्दृग्गाए
लेमाण । तिब्गाए वेयणाए ममाउला तह
रगति निड ॥२६॥

यदि ऐसे अज्ञाना जीव समार वृद्धि शरक
करयाआ मं घर्त्तते हुए और अत्यत तीव्र वेदना से
अ कुन व्याकुल होने पर प्रैसी (पथ्य आचन दि)
मताए रूप शक्ति को कर लेते हैं ॥२६॥

किं पुणु जडया समार-मव्व-दुसाय-वपय
करेतेण । बहुति नदुकसरमजा—णएण न
जिं ऊरेयत्वा ? ॥२७॥

तो फिर शरार क सब दुग्यों का चय करने को तत्पर हुए और अत्यन्त तीव्र दुग्या के रम को जानन धाल जैसे यति (मुनिशा) न ऐसे अरसर म ख-तोपन्ध वृत्ति क्यों नहीं करनी ? अरश्य करनी चाहिये ॥२७॥

निरिया ि तोडपीडा-निहुरियदेहा वि
गोणपोयलया । किं अखमथ पवन्ना, वरल-
सगला तुया, ? न तए ॥२८॥

शरार की सधिया नूट जान पर कल्पन हुए पीडा से अशक्त दह होन पर भी निर्यच जाति के क बदा और भयल नाम के गौ के वचन से न अणसण स्वीकार किया, 'उह क्या तने नहीं मुना ? ॥२८॥

तुच्छतया तुच्छतो पर्यम्

तिग्मियो य । अणमणविहिं पवघ्नो, वेयरणी
वानरो य तदा ॥२६॥

तथा श्रोत्र्यण के समय द्वारिका म येतरणी
नाम का महानैय था, जो परिणाम की अशुभता
से मर कर धरर हुआ, यहा पर गरीर, मल तथा
प्रकृति से मुच्य और जाति से निर्येय होते हुए नी
उसने अणसण विधि को स्वीक्यती ॥२६॥

तुहो वि पिपीलियत्रिहिय तिव्यविययो वि
जायपडियोहो । मासदमणसणविहिं, पडि-
वघ्नो कोसितो सण्यो ॥३०॥

सुदस्वभाव का और कीर्तीया ने करी हुइ
तीय वेदना वाला होते हुए भी भगवान महावीर
उपदेश से निसको प्रतिगोव हो गया है,



1 - जैसे चंडकौशिक सर्प ने अर्द्धमास (१५ दिन) की
अणुसणु विधि स्त्रीशर की ॥३०॥

जम्भतरजखली की-मलस्र बग्धीभव-
म्भि लद्धसुई । निरिया वि छुहावेयण-मग-
णिय तड सठियाऽणसणे ॥३१॥

पूर्वभय में कुशाल मुनि की माता चापणी के
भय में जाति से तिर्यंच होते हुए भी जातिस्म-
रण हो जाने पर भूम का बदना को न गिनती हुई
जैसे उत्तम अणुसणु में स्थित हो गई ॥३१॥

तड ता पणुणो वि इमे, अणुसणुमकरिसु
थिरसमादिपरा । ता नरणीहो वि तुम, सुन्दर !
तुं कीस न ऊरोमि ? ॥३२॥

यदि उपरोक्त पशु भी स्थिर

हुण अणसण ऋ चुके तो हेरु दर । (भाग्यशाली)
नृ नरसिंह होने हुण भी ऋ स्थिर समाधि को
क्या नहीं करता ? ॥३२॥

देवीदारण तहो—उसमगने सुदसण-
गिही नि । यदि मरणमज्झमियो, पडिबन्ध-
वया न उण चलिओ ॥३३॥

गुणान सेठ गहस्थ हात हुण भी अमया रानी
आदि स्त्रिया के वैरो अनुदूल उपसर्ग होने पर
मरण स्वीकार कर लिया पर तु स्वीकार हुण तर्ता
से चलायमान नहीं हुआ ॥३३॥

तह मज्जराइउस्म—माजणियाभियण
मुति उमगणितो । चदावडिमयनिरो, मुगइ
पत्तो अचलसत्तो ॥३४॥ ।

• । तथा निश्चल सत्त्वबालो चन्द्रामनसक रागा
ममप्र रात्रि च सखस्सगा मे उपमन दुइ तात्र वेष्णा
कोन गिनता हुआ शुभभावना मे आरु होकर
संगति मे प्राप्त हुआ ॥३४॥

- गोट्टे पायोपगयो, सुरधृषा गोमए
पलीयिम्मि । उज्झतो चाणको, पटिवन्नो
उत्तम अहं ॥३५॥

गोहूल म पादपोपगमन अणसण हरीअर
पिया हुआ चद्रगुप्त राजा को मत्री चाणक्य दुयधु
मत्रा न छाया का भूवा सुखगा देन पर जहता
हुआ भी जारावना रूप उत्तम अर्थ को प्राप्त
हु ॥३५॥

नद गिदिखो मि तहा,

मयाहिणो अदिगयत्ये । जाया तुमं पि ता सम-
लरीद् । त इगसु सपिसेम ॥३६॥

एस प्रकार यमि गृहस्थ लोंग भा अपन इच्छित
वपार्थ की सिद्धि विषय में अस्वयत्त (अमग्न)
समाधि माने हुए है, ता हे अमणसिद् । (साधुओं
में सिं समान ह मुनि ।) तू भी अति विशेषता
से इस अस्वयत्त समाधि को धारण कर ॥३६॥

मेरुय निष्कृपा, अकरोमा मागरोच्च
गभीरा । धीमतो सप्पुरिसा, इति महल्ला-
पईसु वि ॥३७॥

धैर्यवान् सत्पुरुष महान् शरत्ति के समय भी
मेरुपत की तरह निष्कृपण्य समुद्र की तरह
असोभ्य (अचल) और गभीर होते हैं ॥३७॥

धीरा विमुक्ता गणा आयातोऽपि भरा अप-
रिक्ता । गिरिपद्माग्मत्तया, बहुमावय-
सद्भु भीम ॥३८॥

धीर(१२)सिपवद्वच्छा, ममउत्तदि
हारियो सुभ्रमहाया । माहति उत्तमह ,साव-
यदाढतरगया वि (कुम्भ) ॥३९॥

धैर्यता यान, धन एतन्नादि के संग से रहित,
आत्माकर्तृधी, शरीरदि शुषूपा रहित, और अनेकों
रथापद (सिद्धादि) जानरा से भरे हुए भयंकर
पथनों का धैर्य में निवास करने यान एव धैर्यता
में अनर्थक तेजस्वला धान, समयोक्त विधि से विचार
करने धाने, शुभ्रजन का सहायता वाले, ऐसे
मुनि, सिद्धादि ग्यानों की दादाओं में ग

उत्तम ध्यान में लीन हो कर आराधना रूप उत्तम
अथ जो सा गते हैं ॥३८३॥

भालु रीए अरुण्य, सज्जतो घोरवे-
यणऽहो वि। आराहण पञ्चो, काण्ये अथ
विमुमुमालो ॥४०॥

मियालनी ने निश्चयता खाने पर घोर वेदना
से पीड़ित होते हुए भी अत्रविमुमुमाल मुनि उत्तम
ध्यान वक्त से आराधना का प्राप्त हुए ॥४०॥

सुम्निलगिरिम्भि सुशे-सलो ि मिद्धत्य-
दश्यो भयव । वग्धीए सज्जतो, पडिवन्नो
उत्तम अह ॥४१॥

अरि। एग रक्षणार्थ के मालिक कांश सिद्ध

पर माविना धाम्ने ने अग्नि गुलगा दने पर उत्तम
अथ का धाम्ने किया ॥४८॥

अथ विष भयव वि द्नु कुरुनसुथो ठि
थो उ पडिमाण । माएयनपरवाहि, गोहरणे
दुद्वियदिणगगी ॥४९॥

इमी धाम्ने भगवान् दुन्दुभपुर नाम के मुनि
माहेत (आयो-या) नगर के बाहर गोकुल के
अथ पर काश्मगा यान मे स्थित होने पर
निधय किंसा कुष्ठि ने गुलगाः अग्नि से पीडाते दुण
भी शुभ ध्यान से उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए ॥४९॥

उद्दुदायधरायरिसो, उद्दुद्विमरेयणा-
परद्वो वि । अग्निगणियदेहपीडो, पडिवन्नो
उत्तम अह ॥४९॥